Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 7.384
Volume - 8, Issue - 3, March - 2025

DOIs:10.2018/SS/202503006 --:-- Research Paper / Article / Review

भारत के सांस्कृतिक इतिहास की यात्रा (दिनकर साहित्य के विशेष सन्दर्भ में)

चिराग राजा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना ।
ई मेल: chiragraja57@yahoo.com

शोध सार : भारत की संस्कृति का बोध विचार तथा ज्ञान के क्षेत्र का प्रमुख विषय है। हिंदी जगत में अपने मौलिक रचना कर्म से इस विषय पर विशद अध्ययन करने वालों में दिनकर अग्रणी हैं। 'संस्कृति के चार अध्याय' तथा अपनी विविध कविताओं में दिनकर ने भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की तमाम उतार-चढ़ावों भरी यात्रा का सफल अंकन किया है। भारतीय संस्कृति मूलतः सामासिक स्वभाव से रचित है, जिसमें समावेशिता तथा समन्वय के गुण सहज लभ्य हैं। इस्लाम एवं यूरोप के सामयिक आगमन से इस संस्कृति पर पड़े प्रभावों का रेखांकन दिनकर ने अपनी रचनाओं में किया है। सांस्कृतिक विकासक्रम में आलोक में आधुनिकीकरण के इस युग में अतीत का गौरवबोध, वर्तमान की चिंताओं पर विचार तथा भविष्य के प्रति सजगता से ही हमारा पथ प्रशस्त होगा।

बीज शब्द : संस्कृति, भारत, राष्ट्र, दिनकर, युग, सामासिकता, समन्वय, सनातन, भारतीय आदि।

1. प्रस्तावना: यह निर्विवाद सत्य है कि भारतीय संस्कृति का मूल सनातन विचार है। सनातन का शाब्दिक अर्थ जिसके उद्भव का समय अज्ञात हो माना जाता है। विश्व समुदाय जिसे प्रागैतिहासिक काल कहता है, निश्चित ही वह भारत के लिए तो प्रागैतिहासिक काल कदापि नहीं है।

भारतीय इतिहास तथा संस्कृति का आरंभ जब से होता है, तब से लेकर आज तक यह संस्कृति निरंतर उन्नतिशील भले ही रही है या नहीं, यह अवश्य विचारणीय विषय है, परंतु इसमें कहीं दो मत नहीं होने चाहिए कि इसके मानवतावादी पक्ष का तो सदैव विकास ही होता दृष्टिगत हुआ है।

भारतीय संस्कृति के उत्स का काल वेदों से पूर्व का समय माना जाता है। तत्पश्चात वैदिक काल से लेकर निरंतर इस संस्कृति ने कई उतार-चढ़ाव देखे हैं। इन्हीं उतार-चढ़ावों की बदौलत यह संस्कृति यथासमय परिष्कृत भी होती आई है। इसी कारण यह जीवंत भी है और प्रासंगिक भी। भारतीय संस्कृति पर की गई इकबाल की यह टिप्पणी सटीक लगती है-

"यूनान-ओ-मिस्त्र-ओ-रूमा, सब मिट गए जहाँ से
अब तक मगर है बाकी, नाम-ओ-निशां हमारा ...
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी"

भारतीय संस्कृति का अत्यंत प्रबल पक्ष मानवतावाद है। यह संस्कृति समग्र जगती में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का विचार प्रचारित करती आई है। इसके विकासक्रम में समय-समय पर अनेकों उतार-चढ़ाव आए हैं, साथ ही यह संस्कृति रूढ़िवादी विचारों के साथ-साथ प्रगतिशीलता के आयाम भी अपने-आप में संजोए हुए है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में भारत का समग्र सांस्कृतिक इतिहास गवेषणात्मक एवं विवेचनपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। मुख्यतः भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के चार प्रमुख काल हैं। भारतीय संस्कृति के विकास में सामासिकता की अत्यंत प्रमुख भूमिका है। इस सामासिकता तथा प्रत्येक जाति के योग की बदौलत आज भारतीय संस्कृति का समावेशी रूप हमारे सामने है। इस संबंध में पंडित जवाहरलाल नेहरू के विचार हैं-

"भारत में बसनेवाली कोई भी जाति यह दावा नहीं कर सकती कि भारत के समस्त मन और विचारों पर उसी का एकाधिकार है। भारत आज जो कुछ है उसकी रचना में भारतीय जनता के प्रत्येक भाग का योगदान है।"[1]

धर्म तथा संस्कृति का उद्‌गम तथा विकास युगीन परिस्थितियों के अनुरूप भारतीय जनता पर इसका प्रभाव पड़ता गया। भारतीय संस्कृति के विकास में ऐसे कई तत्त्व रहे, जिन्हें लेकर समाज में न जाने कितने ही भ्रम फैलाए गए, उनके सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही प्रकार के पहलुओं पर सम्यक विवेचन दिनकर ने अपने साहित्य में प्रस्तुत किया है।

दिनकर के अनुसार भारतीय संस्कृति के इतिहास तथा विकासक्रम के चार काल इस प्रकार हैं -1. आविर्भाव काल, 2. बौद्‌ध-जैन काल, 3. मुस्लिम काल तथा 4. यूरोपीय उपनिवेश का काल।

दिनकर के अनुसार भारतीय संस्कृति के विकासक्रम का पहला काल 'भारतीय जनता की रचना और हिंदू संस्कृति का आविर्भाव' है। उन्होंने कहा है कि यह काल मनुष्य जाति की विविध भूखंडों पर उत्पत्ति तथा प्रारम्भिक मानवीय सभ्यता की रचना भारत के अतिरिक्त कुछ और स्थानों पर भी हुई। "जिस प्रकार अफ्रिका, चीन के लोग दावा करते हैं कि मानव की उत्पत्ति उनके यहाँ हुई, उसी प्रकार भारत के पास भी यहीं दावा करने के निश्चित आधार हैं।"[2]

दिनकर ने आर्य-द्रविड़ समस्या पर विस्तार से विचार किया है। द्रविड़ भारत के मूलनिवासी थे, इस बात के ठोस प्रमाण उपलब्ध हैं। परंतु आर्यों के बारे में भी समान दावा नहीं किया जा सकता। संस्कृति के विकासक्रम में आग्नेय, नीग्रो जातियों की भूमिका पर भी उन्होंने विचार किया है। हिन्दू धर्म के नाना अवतारों यथा राम, कृष्ण, शिव, गणेश आदि पर भी दिनकर ने अनुसंधानपरक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

प्रारंभ में हिन्दू संस्कृति तथा बाद में भारतीय संस्कृति वास्तव में विविध संस्कृतियों को स्वयं में पचा लेने की क्षमता रखती है। सांस्कृतिक इतिहास के इस प्रथम चरण में आग्नेय, औष्ट्रिक, नीग्रो, आर्य-द्रविड़ आदि जातियों का इस देश में आगमन हुआ। परिणामस्वरूप हिन्दू संस्कृति की रचना हुई।

विविध जातियों में किसी बड़े जातिगत संघर्ष की घटना हुए बिना हिन्दू संस्कृति को अपना प्रारम्भिक अस्तित्व प्राप्त हुआ। इसके बाद ही दार्शनिक तथा धार्मिक धरातल पर क्रांतियाँ हुईं। भारतीय संस्कृति की महत्ता पर टिप्पणी करते हुए दिनकर ने कहा है कि "विश्वजनीनता, विभिन्न जातियों को एक महाजाति के साँचे में ढालने का प्रयास और अनेक वादों, विचारों और धर्मों के बीच एकता लाने का निराला ढंग सभी युगों में भारतीय समाज की विशेषता रहा है।"[3]

वैदिक युग के बाद सांस्कृतिक इतिहास का दूसरा प्रमुख युग जैन, बौद्‌ध धर्मों का उदय माना जाता है। इसमें कहीं कोई संशय नहीं कि वैदिक युग के बाद विविध धार्मिक अनुष्ठान करने का अधिकार जाति विशेष के लोगों ने ले

लिया। समाज के कई तबकों को एक ओर तो धार्मिक अनुष्ठान, पूजा-पाठ आदि अधिकारों से दूर रखा गया, वहीं दूसरी ओर सामाजिक विकास के क्रम में भी ये पिछड़ते ही रहे। ऐसे समय में निर्वाण के दार्शनिक मार्ग को प्रशस्त किया बोधिसत्त्व गौतम बुद्ध ने। वर्धमान महावीर उनके पहले ही जैन धर्म के माध्यम से अहिंसा का विराट सन्देश प्राणीमात्र तक विस्तारित करने की पहल कर चुके थे।

कालक्रम में जैन धर्म तो दार्शनिक धरातल पर अवस्थित होकर समाज में अपनी स्वाभाविक गति से बढ़ता रहा, परन्तु बौद्ध धर्म के आचार-विचारों में हिन्दू धर्म की रूढ़ियाँ प्रकारान्तर से स्थान पा गईं। इस प्रकार प्रतिक्रियावादी धर्म के रूप में बौद्ध धर्म सामाजिक धरातल पर निरन्तर आगे बढ़ता ही रहा।

सांस्कृतिक इतिहास का मध्यकाल हिंदू संस्कृति और इस्लाम के टकराव के रूप में देखा जा सकता है। मध्यकाल में जब मुसलमानी राज देश की केन्द्रीय सत्ता पर स्थापित हो गया, तब विविध सामाजिक परिवर्तनों की धारा चल पड़ी। हिन्दू और मुस्लिम दोनों समाजों में सांस्कृतिक मिश्रण की प्रक्रिया बड़ी मात्रा में घटित हुई।

साहित्यिक क्षेत्र में भक्ति आंदोलन हुआ, धार्मिक जगत में हिन्दुत्व की व्यावहारिक बुराइयों पर गहन दृष्टिपात कर सुधार के छिटपुट प्रयत्नों की आवाज़ें उठीं। कला के क्षेत्र में सर्वत्र इस्लामी शैली का प्रभुत्व दिखाई पड़ने लगा। यह शैली वास्तव में हिन्दू और इस्लामी दोनों संस्कृतियों का योग थी। कालक्रम में हिन्दुत्व और इस्लाम पूरी तरह एकाकार हो गए। बावजूद इस एकता के आज भी कई ऐसे धार्मिक पायदान हैं, जो दो भिन्न-भिन्न समाजों का प्रतिनिधित्व करते हैं। धर्म निरपेक्षता के भाव का उदय, सामाजिक सहिष्णुता, आवश्यकता पड़ने पर प्रवृत्तिमूलक होने का गुण आदि इस युग की प्राप्तियाँ रहीं।

सांस्कृतिक इतिहास का अंतिम और वर्तमान काल यूरोप के आगमन से सम्बन्धित है। अंग्रेज़ों का उपनिवेशवादी शक्ति के रूप में भारत आगमन आधुनिकता के अभिनव वातायन खुलने, पाश्चात्य के इतर प्रत्येक संस्कृति को हेय सिद्ध करने, यूरोप केन्द्रित विश्व की रचना किए जाने का युग था।

अंग्रेज़ों के आगमन से अधिकांश मामलों में जहाँ भारत को भारी नुकसान हुआ, वहीं विज्ञान की नई धारा का इस देश को भरपूर लाभ भी हुआ। संस्कृति से दूर किन्तु आधुनिक विकास के विविध आयामों को आज देश प्राप्त कर चुका है।

अपनी कविताओं में भी यत्र-तत्र दिनकर ने भारत के सांस्कृतिक इतिहास की विविध झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। भारत के समस्त सांस्कृतिक इतिहास का सार प्रस्तुत करते हुए दिनकर कहते हैं-

> "विश्व विभव की अमर वेलि पर, फूलों सा खिलना तेरा
>
> शक्तियाँ पर चढ़कर वह, उन्नति रवि से मिलना तेरा
>
> भारत! क्रूर समय की मारों से न जगत सकता है भूल
>
> अब भी उस सौरभ से सुरभित हैं कालिन्दी के कल कूल"[4]

दिनकर भारतीय संस्कृति के वैभव के पुनर्जागरण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके अनुसार अतीत का वैभव पुनः और अधिक आवेग से उभरेगा। दिनकर के विचारों में द्वंद्व की अपेक्षा समन्वय अधिक है। वे जब भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्र के उत्थान की कामना करते हैं तो अधुनातन के प्राचीन से समन्वय की बात करते हैं। उनका समन्वय भारतीय संस्कृति के समस्त आदर्शों का प्रतिनिधि है। इन आदर्शों की रचना हमारी संस्कृति के विविध मूल्यों के साझा योग से

हुई है। वृद्ध किन्तु समस्त संसार को अपने ज्ञान की ज्योति के बल पर मानवीय आभा से परिपूर्ण करने देने की सदिच्छा रखने वाला भारत दिनकर वाणी में जैसे स्वयं कह रहा है-

"पुरातन और नूतन वज्र का संघर्ष बोला;

विभा-सा कौंध कर भू का नया आदर्श बोला;

नवागम-रोर से जागी बुझी - ठण्डी चिता भी;

नई शृंगी उठा कर वृद्ध भारतवर्ष बोला।"[5]

हमारी सामासिक संस्कृति के समक्ष सबसे बड़ी चिन्ता इसके समन्वय तत्त्व को खो देने की है। दिनकर की कविता 'कस्मै देवाय?' इसी क्रम में भारत के अतीत और वर्तमान के मध्य संवाद करती दिखाई देती है। इस कविता में कवि प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर के नष्ट होने पर अपना शोक प्रकट करता है। यह पीड़ा सामासिक संस्कृति के तत्त्वों से दूर होने पीड़ा है; संस्कृति समन्वय के मूल्य बोध से अनभिज्ञता की पीड़ा है; साम्प्रदायिक एवं जातिगत तनाव की पीड़ा है; राष्ट्र का आधार धर्म बनाए जाने की चेष्टाओं की पीड़ा है।

"छीन-छीन जल-थल की थाती/ संस्कृति ने निज रूप सजाया,

विस्मय है तो भी न शान्ति का/ दर्शन एक पलक को पाया ।"[6]

दिनकर ने अपने साहित्य में यत्र-तत्र-सर्वत्र हमारे सांस्कृतिक इतिहास के विविध दृश्य चित्रित किए हैं। इनसे भारतीय जन मानस को गौरव का कारण और भविष्य को लेकर सजग होने का सन्देश मिलता है।

2. निष्कर्ष :

कहा जा सकता है कि रामधारी सिंह 'दिनकर' की रचनाएँ संस्कृति को समझने, राष्ट्र निर्माण के क्रम में धर्म तथा दर्शन का सकारात्मक अवलंबन प्राप्त करने तथा भारतीयता एवं वसुधैव कुटुम्बकम सम्बन्धी अवधारणा को सरल ढंग से सुस्पष्ट करने का लक्ष्य लिए सामान्य पाठकों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। वैचारिक निबंधों तथा काव्य ग्रंथों के माध्यम से भारतीय संस्कृति तथा इसकी सामासिकता के सबसे बड़े व्याख्याकार के रूप में दिनकर स्वयंसिद्ध हैं।

सन्दर्भ सूची :

[1] दिनकर, पंडित जवाहरलाल नेहरू, संस्कृति के चार अध्याय (प्रस्तावना) 1956, उदयाचल प्रकाशन, पटना, पृ. सं. 16
[2] दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, 1956, उदयाचल प्रकाशन, पटना, पृ. सं. 5
[3] दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, 1956, उदयाचल प्रकाशन, पटना, पृ. सं. 98
[4] दिनकर, प्रणभंग तथा अन्य कविताएँ, दिनकर ग्रंथमाला, 2020, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, पृ. सं. 6
[5] दिनकर, चक्रवाल, उदयाचल प्रकाशन, 1956, पटना, पृ. सं. 52
[6] दिनकर, रेणुका, उदयाचल प्रकाशन, 1956, पटना, पृ. सं. 29